International Journal of Applied Research 2017; 3(11): 505-509

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2017; 3(11): 505-509
www.allresearchjournal.com
Received: 04-08-2021
Accepted: 25-10-2021

डॉ0 अनुराधा गोयल
असोसिएट प्रोफेसर, बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 अनुराधा गोयल
असोसिएट प्रोफेसर, बरेली कॉलेज, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

तनाव के अध्ययन का सामाजिक महत्व

डॉ0 अनुराधा गोयल

प्रस्ताबना:

17वीं शताब्दी को प्रबोधन का युग, 18वीं को तर्क का युग, 19वीं को प्रगति का युग और 20वीं शताब्दी को चिंता और तनाव का युग कहा गया है (कोलमैनः 1976)। आधुनिक जीवन तनाव से भरा है। जैसे–जैसे संगठन अधिक जटिल होते जाते हैं, लोगों में क्षमता और तनाव की मात्रा बढ़ती जाती है। शहरीकरण, औद्योगीकरण और समाज में विकास में वृद्धि से तनाव बढ़ रहा है। ये सामाजिक–आर्थिक जटिलता के अपरिहार्य परिणाम हैं और कुछ हद तक इसके उत्तेजक कारण भी हैं। लोग तनाव महसूस करते हैं क्योंकि जीवन में होने वाली घटनाओं पर उनका अब पूरा नियंत्रण नहीं रह जाता है। आधुनिक जीवन में तनाव से मुक्ति संभव नहीं है।

स्ट्रेस लैटिन शब्द 'स्ट्रिंगर्स' से बना है, जिसका अर्थ है कस कर खींचना। 17वीं शताब्दी में इसका उपयोग कठिनाइयों, तनावों, प्रतिकूलताओं या कष्ट (शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी 1993) के लिए किया जाता था, 18वीं और 19वीं शताब्दी में यह ''बल, दबाव, तनाव या मजबूत प्रयास'' को दर्शाता था, यह न केवल वस्तुओं को संदर्भित करता था बल्कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के अंगों या मानसिक शक्तियों के लिए प्रयुक्त होता था, (सेली 1956)।

समकालीन साहित्य में, चार समानार्थी शब्द सामान्य हैं– दाब, तनाव, संघर्ष और दबाव। 'तनाव' शब्द का प्रयोग उत्तेजना (या कारण) या प्रतिक्रिया (शारीरिक, व्यवहारिक या संज्ञानात्मक परिवर्तन) को दर्शाने के लिए किया गया है (पारीकः 1988)। ''तनाव'' शब्द का प्रयोग उस उद्दीपन के लिए किया जाता है जो तनाव उत्पन्न करता है। समकालीन परिभाषाएँ तनाव को 'खराब–फिट' के रूप में देखती हैं। यानी, पर्यावरणीय अवसरों और मांगों और व्यक्तिगत जरूरतों और क्षमताओं और अपेक्षाओं के बीच बातचीत या अनुपयुक्त प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। जब फिट खराब होता है, जब जरूरतें पूरी नहीं होती हैं, या जब क्षमता खत्म हो जाती है या कम कर दिया जाता है, तो जीव विभिन्न रोगजनक तंत्रों के साथ प्रतिक्रिया करता है।

जब लोग सामाजिक व्यवस्था से जुड़ जाते हैं, तो उनसे सामाजिक व्यवस्था के लिए कुछ दायित्वों को पूरा करने और उस व्यवस्था में परिभाषित स्थानों में फिट होने की उम्मीद की जाती है। समाजशास्त्री, पूर्व को ''भूमिका'' और बाद वाले को ''स्थिति'' के रूप में संदर्भित करते हैं। 'रोल', एक फ्रांसीसी लैटिन शब्द ''रोटुला' (छोटा पहिया) का अंग्रेजी शब्द। पुरातन काल में इसका इस्तेमाल एक गोल लकड़ी के रोल को नामित करने के लिए किया जाता था। 16वीं और 17वीं शताब्दी की ओर आधुनिक चरण के उद्भव के साथ, नाटकीय पात्रों का हिस्सा ''भूमिकाओं'' (रोल) कहा जाता है (मोरेनो, जेएल 1960–80, रानी 1976 में वर्णित)। भूमिका के विचार का उपयोग नुस्खे, विवरण, मूल्यांकन और कार्रवाई को दर्शाने के लिए किया गया है। इसमें किसी व्यक्ति की गुप्त और प्रत्यक्ष प्रक्रियाओं का उल्लेख किया गया है। शायद सबसे आम परिभाषा यह है कि, भूमिका, नुस्खे का एक सेट है जो परिभाषित करता है कि स्थित सदस्य का व्यवहार क्या होना चाहिए। भूमिका एक संबंधपरक शब्द है। एक व्यक्ति एक भूमिका निभाता है, दूसरे व्यक्ति की भूमिका जो एक काउंटर पोजीशन से जुड़ी होती है। उदाहरण के लिए, एक शिक्षक, एक छात्र के संबंध में, एक शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका निभाता है। भूमिका अवधारणा का यह संबंधपरक पहलू भूमिका ग्रहण करने की धारणा पर केन्द्रित है।

किसी भी संगठन को भूमिकाओं की एक प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हालाँकि, भूमिका ही एक प्रणाली है। एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाए तो दो भूमिका प्रणालियाँ महत्वपूर्ण हैं– (क) विभिन्न भूमिकाओं की प्रणाली जिसमें उसकी भूमिका एक हिस्सा है, और (ख) जिसमें उसकी भूमिका अन्य महत्वपूर्ण भूमिकाओं द्वारा परिभाषित की जाती है। पहले को रोल स्पेस और दूसरे को रोल सेट कहा जाता है। रोल स्पेस में 3 मुख्य भाग होते हैं – स्वयं, प्रश्नाधीन भूमिका, और दूसरी भूमिका जो वह ग्रहण करता है। इस क्षेत्र के भीतर किसी भी संघर्ष को भूमिका स्थान संघर्ष या तनाव के रूप में जाना जाता है।

1. सेल्फ रोल डिस्टेंसः यह तनाव स्व–अवधारणा और भूमिका से अपेक्षाओं के बीच के संघर्ष से उत्पन्न होता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसी भूमिका निभाता है जिसे वह अपनी स्वयं की अवधारणा के साथ विरोधाभासी पाता है, तो वह तनाव महसूस करता है।

2. बुनियादी भूमिका संघर्षः अन्य महत्वपूर्ण लोगों के साथ समाजीकरण और पहिचान के परिणामस्वरूप, एक व्यक्ति अपेक्षाओं को विकसित करना सीखता है, यह काफी संभावना है कि वह अपनी भूमिका की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता और तनाव महसूस करता है।

3. भूमिका का ठहरावः जैसे–जैसे व्यक्ति की उर्म बढ़ती है, वैसे–वैसे वह समाज में उसकी भूमिका भी बढ़ती है। व्यक्ति की प्रगति के साथ, उसकी भूमिका बदल जाती है और भूमिका में इस परिवर्तन के साथ, नई भूमिका लेने की आवश्यकता महत्वपूर्ण हो जाती है। यह भूमिका वृद्धि की समस्या है। यह एक गंभीर समस्या बन सकती है, खासकर जब एक व्यक्ति लंबे समय तक एक भूमिका निभा रहा है, और जब दूसरी भूमिका में प्रवेश करता है, तो उसमें वह कम सुरक्षित महसूस कर सकता है। हालांकि, नई भूमिका की मांग होती है कि व्यक्ति अपनी पिछली भूमिका से आगे निकलकर नई भूमिका को प्रभावी ढंग से ग्रहण करे। यह व्यक्ति में कुछ तनाव पैदा करती है।

4. अंतर भूमिका दूरीः यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक भूमिकाओं को निभाता है, तो उसके की जाने वाली किन्हीं दो भूमिकाओं के बीच संघर्ष होना तय है। आधुनिक समाजों में इस तरह के अंतर्रोल संघर्ष अक्सर होते हैं, जब व्यक्ति तेजी से विभिन्न संगठनों और समूहों में कई भूमिकाऐं निभा रहा होता है।

भूमिकाओं के बीच दूसरा जुड़ाव 'रोल सेट' है। रोल सेट पारस्परिक भूमिकाओं के समूह होते हैं, यानी भूमिकाओं को एक साथ इस तरह से बांधा जाता है कि दूसरी भूमिका को निभाने के लिए पहली को निभाना आवश्यक होता है। इस प्रकार के समूह में भूमिकाएँ इस अर्थ में पारस्परिक होती हैं कि एक भूमिका के दायित्व दूसरे के दायित्व से जुड़े होते हैं। भूमिका सेट करने वाले व्यक्तियों की उस भूमिका से भिन्न अपेक्षाएँ होती हैं, जो आप धारण करते हैं। इन अपेक्षाओं के बीच खरा न उतरने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले संघर्ष या तनाब, और इसे भूमिका निर्धारित संघर्ष (तवसमे मज बवदसिपबजे) के रूप में परिभाषित किया जाता है। ये संघर्ष इस प्रकार हैंः

1. भूमिका अस्पष्टताः जब व्यक्ति अपनी भूमिका से लोगों की विभिन्न अपेक्षाओं के बारे में समझ नहीं पाता है, तो वह संघर्ष (तनाव) का सामना करता है, जिसे भूमिका अस्पष्टता कहा जा सकता है। यह उसके लिए उपलब्ध संकेतों की समझ की कमी के कारण होता है।
2. भूमिका अपेक्षा संघर्षः जब विभिन्न भूमिका देने वालों (भूमिका से अपेक्षा रखने वाले व्यक्ति) द्वारा परस्पर विरोधी अपेक्षाएं या मांगें की जाती हैं, तो भूमिका निभाने वाले को इस तनाव का अनुभव हो सकता है।
3. रोल ओवरलोडः जब भूमिका निभाने वाले को लगता है कि उसकी भूमिकाओं से लोगों को बहुत अधिक उम्मीदें हैं, तो वह भूमिका अधिभार का अनुभव करता है। जैसे किसी मैच को जीतने के लिए कप्तान पर मानसिक दबाब आदि।
4. भूमिका क्षरणः यह एक व्यक्ति की व्यक्तिपरक भावना है कि उसकी भूमिका से जुड़ी कुछ महत्वपूर्ण भूमिकाएं किसी दूसरे व्यक्तियों द्वारा साझा की जाती हैं तो व्यक्ति तनाव अनुभव करता है।
5. संसाधन अपर्याप्तताः इस प्रकार के तनाव का अनुभव तब होता है जब भूमिका निभाने वाले को भूमिका को प्रभावी ढंग से करने के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध नहीं होते हैं।
6. व्यक्तिगत अपर्याप्तताः जब एक भूमिका निभाने वाले को लगता है कि वह भूमिका को प्रभावी ढंग से निभाने के लिए सक्षम नहीं है, तो वह इस तनाव का अनुभव कर सकता है।
7. भूमिका अलगाव : भूमिका सेट में भूमिका निभाने वाले को लग सकता है कि कुछ भूमिकाएँ हैं, जो मनोवैज्ञानिक रूप से उसके निकट हैं (अर्थात जिन्हें वह स्वाभविक रूप से रोज निभाता है) जबकि कुछ अन्य दूरी पर हैं (अर्था जिन्हें वह किसी भी कीमत पर नहीं कर सकता) जैसे किसी मैच में अगर किसी वैट्समैन से एक ही ओवर में 20 रन मारने को कहा जाए तो उसे तनाव हो जाएगा।)

भूमिका संघर्ष आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का एक अंतर्निहित हिस्सा है। व्यक्ति कई पदों पर काबिज होते हैं और इसलिए तदनुसार संबंधित भूमिकाएँ निभाने के लिए बाध्य होते हैं। सामाजिक व्यवस्था में एकीकृत होने के कारण, हम कह सकते हैं कि भूमिका संघर्ष क्रमबद्ध होते हैं। कई भूमिकाओं को निभाने के कारण व्यक्ति पर भार बढ़ जाता है। इसे सामान्य अधिभार (Normative Overload) कहा जा सकता है। (गुडे 1960) मानक अधिभार हमारे समाज में कई पोजीशन में मिलता है। मिलने वालों की तादात इतनी अधिक होती है कि कोई भी व्यक्ति उन सभी से नहीं मिल सकता है।

नॉर्मेटिव ओवरलोड को इंट्रा सिस्टम ओवरलोड और इंटर सिस्टम ओवरलोड में बाँट सकते हैं। इंट्रा सिस्टम ओवरलोड एक विशिष्ट सामाजिक प्रणाली के भीतर अधिभार को संदर्भित करता है और इंटर सिस्टम ओवरलोड, दो अलग–अलग प्रणालियों के बीच अधिभार को संदर्भित करता है।

भूमिका अधिभार को मात्रात्मक और गुणात्मक अधिभार में विभेदित किया गया है (फ्रेंच और कैपलन, 1973, कूपर और मार्शल 1980 में वर्णित। मात्रात्मक अधिभार का अर्थ ''बहुत अधिक करना'' है, जबकि गुणात्मक अधिभार का अर्थ है वह कार्य करना जो ''बहुत कठिन'' है।

20वीं सदी को चिंता और तनाव का युग कहा गया है। औद्योगीकरण, शहरीकरण की सहवर्ती प्रक्रिया के साथ मशीन प्रौद्योगिकी और कारखाना प्रणाली की शुरुआत हुई जिसके कारण संयुक्त परिवार संरचना का विघटन हुआ। गाँव तेजी से छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित हो रहे थे, परिवारों के पुरुष सदस्य नौकरियों की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे थे। उनकी पत्नियों ने नए वातावरंण का अनुभव किया जिससे परिवारों की नई इकाइयाँ बन गईं। महिलाओं के रोजगार करने के साथ प्रत्येक सदस्य के कार्य और भूमिका की परिभाषा बदल रही है।

20वीं सदी में इतनी तेजी से बदलाव आया जितना पहले कभी नहीं हुआ। शहरी जीवन की तेज गति, मनुष्य के समय और शक्ति की अत्यधिक माँगों के साथ, व्यक्ति को लगातार दूसरों और खुद के समय के साथ तालमेल बिठाने वाले में बदल दिया। विशेषज्ञता, औद्योगीकरण की एक अन्य विशेषता है, शहर के रहन–सहन के साथ घुल–मिलकर मनुष्य के दैनिक मेलजोल की संख्या में और वृद्धि हुई जिससे संबंध ''क्षणिक, खंडीय, अवैयक्तिक और सतही (विर्थ, 1938, नारायणन 1989 में वर्णित) हो गए। मनुष्य अब अपने व्यक्तित्व का पूर्ण प्रदर्शन नहीं कर पाता है और इस प्रकार संकट में परिस्थितियों के कारंण व्यक्तित्व दब जाता है। 20वीं सदी में आए इतने सारे परिवर्तनों के बीच, महिलाओं की सामाजिक स्थिति में कई गहरे बदलाव आए हैं। पहले 'पुरूषों हेतु प्रयुक्त' नौकरियों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी, और दूसरा परिवार और रोजगार में तालमेल मिलाने वाली महिलाओं की बढ़ती संख्या है।

साथ ही, भारत के उपनिवेशीकरण ने भारतीय समाज को पश्चिमी संस्कृति और प्रभाव से अवगत कराया। महिलाओं की स्थिति और भूमिकाओं में इसके दूरगामी परिणाम हुए। 19वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलनों और 20वीं सदी के क्रांतिकारी आंदोलन का उद्देश्य पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता मिटाना था। हालांकि आजादी से पहले की अवधि में सामाजिक बुराइयों को मिटाने और महिलाओं को नागरिक और संपत्ति के अधिकार प्रदान करने के लिए जागरूकता पैदा हुई थी, लेकिन 1970 के दशक में इन मुद्दों को फिर से जीवंत किया गया था। संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार की गारंटी दी, और महिला विरोधी सामाजिक प्रथाओं की सार्वभौमिक रूप से निंदा की गई। व्यापक शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया गया था, इस प्रकार मध्यम और उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए नौकरी के अधिक अवसर पैदा हुए। इसके परिणामस्वरूप कई महिलाओं ने कौशल और प्रशासनिक पद वाले गैर–पारंपरिक व्यवसायों को अपनाया।

पूर्व–औद्योगिक समाज में, पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक भूमिकाओं को एक साथ जोड़ दिया गया था, पारिवारिक की सदस्यों की निर्धारित भूमिकाएं थीं। परिवार उत्पादन की मूल इकाई था और दोनों (पति एवं पत्नी) एक दूसरे के कार्यों में पारस्परिक रूप से निर्भर होने के कारण एक दूसरे का हाथ बंटाते थे। स्पष्ट रूप से, महिलाओं की भूमिका को पुरुष की तुलना में कम आंका गया था, और महिलाओं की भूमिका पूरी तरह से घरेलू क्षेत्र के संदर्भ में निर्धारित की गयी थी।

हाल के वर्षों में, व्यावसायिक संरचना का सबसे तेजी से बढ़ने वाला वर्ग पेशा रहा है। पेशा समान रूप से शिक्षा के साथ–साथ औद्योगीकरण पर निर्भर है। इसलिए 'पेशा चुनने की घटना' (प्रोफेशनलिस्म) समाजशास्त्रियों द्वारा अध्ययन का विषय बन गई है। 'पेशा चुनने की घटना' (प्रोफेशनलिस्म)

का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण ही पेशा निर्धारित करता है। ''व्यावसायिकता (प्रोफेशनलिस्म) एक पेशे को एक संगठित समूह के रूप में देखती है, जो लगातार समाज के साथ बातचीत कर रहा होता है और जो इसके केन्द्र का निर्माण करता है, जो औपचारिक और अनौपचारिक संबंधों के नेटवर्क के माध्यम से अपने सामाजिक कार्यों को करता है, और जो अपनी उप संस्कृति (subculture) बनाता है, और कैरियर की सफलता के लिए, इसे पूर्वनिर्धारित प्रयोजन के रूप में समायोजन करता है (पार्सन्स 1939, पार्सन्स, 1961 में वर्णित)।

सभी व्यवसायों में कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं। जो हैं 1. व्यवस्थित सिद्धांत 2. प्राधिकरण 3. सामुदायिक स्वीकृति 4. नैतिक संहिताएं और 5. एक संस्कृति (culture)। इसका निश्चित रूप से यह अर्थ नहीं है कि ये विशेषताएँ केवल व्यवसायों का एकाधिकार हैं। निश्चित रूप से गैर–पेशेवर व्यवसाय भी कुछ हद तक यह विशेषताएं रखते हैं। 'वास्तव में, एक समाज में पेशों को एक निरंतरता के साथ वितरित किया जाना चाहिए। इसके लिए कुछ सिद्धांत सुझाए गउ हैं–

1. सिस्टेमैटिक बॉडी ऑफ थ्योरीः वे कौशल (skill) जो एक पेशेवर प्रवाह की विशेषता रखते हैं और विशेष प्रकार के पेशे का ज्ञान रखते हैं, उसे उसी के अनुसार पेशे में नियुक्त किया जाता है, इसे बॉडी ऑफ थ्योरी कहा जाता है। एक पेशेवर कौशल हासिल करने के लिए सिद्धांत की महारत की आवश्यकता होती है, और जो उस आधार के रूप में कार्य करता है, जिसके आधार पर पेशेवर प्रशिक्षण के द्वारा अपने कौशल को युक्तिसंगत बनाता है। गैर–पेशेवर के प्रशिक्षण में यह सुविधा वस्तुतः अनुपस्थित है।
2. पेशेवर अधिकारः एक गैर–पेशेवर व्यवसाय के विपरीत, जिसमें ग्राहक हमेशा सही होते हैं, एक पेशेवर रिश्ते में पेशेवर हमेशा यह तय करता है कि क्या अच्छा है या क्या बुरा। क्लाइंट के पास पेशेवर निर्णय को स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है क्योंकि वह पेशेवर प्राधिकरण के अधीन है। क्लाइंट इस प्राधिकरण से सुरक्षा की भावना प्राप्त करता है, पेशेवर प्राधिकरण असीमित नहीं है– इसका कार्य उन विशिष्ट क्षेत्रों तक ही सीमित है जिनके भीतर पेशेवर योग्य हैं। पार्सन्स (1961) ने इसे कार्यात्मक विशिष्टता के रूप में संदर्भित किया है।
3. समुदाय की स्वीकृतिः प्रत्येक पेशा, समुदाय को कुछ क्षेत्रों में अपने अधिकार को मंजूरी देने के लिए व्यवसायों, शक्तियों और विशेषाधिकारों की एक श्रृंखला प्रदान करके को राजी करने का प्रयास करता है। सामुदायिक अनुमोदन, औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। पेशा, समुदाय को आश्वस्त करता है कि किसी भी व्यक्ति को, जो किसी मान्यता प्राप्त पेशेवर स्कूल में प्रशिक्षित नहीं किया गया है, उसे पेशेवर उपाधि नहीं दी जाएगी। इसके अलावा, पेशा, समुदाय को अपनी ओर से पेशेवर कौशल का अभ्यास करने के लिए, योग्य लोगों की स्क्रीनिंग के लिए, एक लाइसेंस प्रणाली स्थापित करने के लिए राजी करता है। विशेषाधिकारों में, सबसे महत्वपूर्ण गोपनीयता है। समुदाय इसे विशेषाधिकार प्राप्त संचार के रूप में मानता है, जिसे केवल ग्राहक और पेशेवर के बीच साझा किया जाता है।
4. विनियमित आचार संहिताः एक पेशे की नैतिक संहिता, आंशिक औपचारिक और आंशिक रूप से अनौपचारिक होती है। औपचारिक लिखित होती है, अनौपचारिक अलिखित होती है। व्यावसायिक संहिता में परोपकार की भावना होती है और अधिकतर सार्वजनिक सेवा हेतु होते हैं। यही कारण है कि, ''पेशेवर'' और ''नैतिक'' जैसे शब्द व्यावसायिक व्यवहार पर लागू होने पर समानार्थक रूप से उपयोग किए जाते हैं। साथ ही, पेशेवर से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वार्थ से बचे रहें, और व्यक्तिगत विवेक का बलिदान करके भी अपनी सेवाएं पूर्ण क्षमता के साथ प्रदान करने के लिए तैयार रहे।
5. व्यावसायिक संस्कृति : प्रत्येक पेशा औपचारिक और अनौपचारिक समूहों के नेटवर्क के माध्यम से संचालित होता है। इनमें ऐसे संगठन शामिल होते हैं जिनके माध्यम से पेशा अपनी सेवाएं देता है, संगठन, जिनके कार्य व्यवसायों की प्रतिभा को फिर से भरना होता है, और ऐसे संगठन जो व्यवसायों के सदस्यों की ओर से बढ़ती चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में उभरे हैं, और जो तथाकथित समूह के हित और उद्देश्य को बढ़ावा देते हैं। ये पेशेवर संघ हैं। अनौपचारिक समूहों में, सहकर्मियों के घनिष्ठ रूप से जुड़े समूह, होते हैं। इन समूहों की सदस्यता, व्यवसाय, परिवार, धर्म या जातीय पृष्ठभूमि और व्यक्तित्व की विशिष्टताओं पर आधारित होती है। पेशेवर संस्कृति की केंद्रीय अवधारणाओं में से एक कैरियर अवधारणा है। इस अवधारणा का केंद्र काम के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण है जो विशेष रूप से पेशेवर है। इसमें ''अच्छे कार्यों'' के लिए समर्पित जीवन एक कैरियर की अनिवार्यता होती है।

इसमें व्यावसायिक कार्य को कभी भी केवल लक्ष्य प्राप्ति के साधन के रूप में नहीं देखा जाता है, यह अपने आप में अंत है। युवाओं को शिक्षित करना, बीमारों का इलाज करना आदि अपने आप में एक अच्छे कार्य हैं। पेशेवर, मुख्य रूप से अपनी आत्मिक संतुष्टि के लिए अपनी सेवाएं देता है। इसके अलावा, काम करने का समय पूरा हो गया है परन्तु इस तरह के पेशेवर व्यक्ति के लिए उसका काम ही उसकी जिंदगी बन जाता है। समाज इन पेशेवर को उच्च दर्जा देता है और इसलिए पेशेवरों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी भूमिकाएँ उसी (समाज की अपेक्षाओं) के अनुसार निभाएँ। उनसे उच्च स्तर की सत्यनिष्ठा और निष्पक्ष व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

व्यवसायों की विशेषताओं के कारण, वे कठिन अपेक्षाओं से ग्रस्त हो सकते हैं, जिससे चिकित्सकों को अपर्याप्तता, दबाव, तनाव और कभी–कभी अपराधबोध की भावनाओं का अनुभव होने की संभावना है, खासकर यदि वे अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं। नए व्यावसायिक जागरण के साथ, उन्नत शैक्षणिक संस्थानों में वृद्धि हुई, व्यवसायों में वृद्धि हुई और तदनुसार पेशेवरों की संख्या में भी वृद्धि हुई। वे, शिक्षा के साथ–साथ समान रूप से औद्योगीकरण का परिणाम हैं।

आधुनिक औद्योगिक दुनिया में पहली सांस्कृतिक व्यवस्था है जो महिलाओं को स्वतंत्र रूप से नौकरियाँ करने की अनुमति देती है और उन्हें परिवार के अन्य सदस्यों से स्वतंत्र होने की अनुमति देती है (गोडे 1960)। महिलाओं की बढ़ती मांगों के साथ, कैरियर का चुनाव महत्वपूर्ण है। महिला अब अपने पुरुष समकक्ष के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर रही है, बल्कि, आधुनिक समाज में उनकी भूमिकाओं को उनके साथ ताल–मेल बैठाने के लिए परिभाषित किया गया है। इससे व्यवसायों में महिलाओं की भागीदारी में जबरदस्त वृद्धि हुई है और इससे, विशिष्ट व्यवसायों को अब पुरुषों के पेशे के रूप में नहीं माना जाता है। अब ऐसे पेशों की कोई कमी नहीं है जिनहें महिलाएं चुन सकती हैं।

ऐसे कई कारण हैं जो महिलाओं को रोजगार करने के लिए प्रेरित करते हैं। अक्सर, प्राथमिक आवश्यकता परिवार की आय बढ़ाने की हो सकती है या कभी–कभी वह अकेली कमाने वाली सदस्य हो सकती है। यह ''आकस्मिकता स्पेक्ट्रम'' (एपस्टीन 1970) है। वह आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र है, जो उसमें आत्मविश्वास जगाती है और स्वं की वैल्यू समझाती है। कई कामकाजी महिलाओं, विशेष रूप से पेशेवर महिलाओं को उनके पतियों की तरह ही एक स्वतंत्र स्टेट्स के रूप में देखा जाता है। इससे उन्हें एक अच्छा ''गृहिणी'' होने के अलावा आत्म–संतुष्टि और कुछ हासिल करने की भावना को जाग्रत करती है।

किसी भी प्रकार का सामाजिक परिवर्तन सामाजिक संरचना में तनाव और तनाव उत्पन्न करता है, जो विशेष रूप से पहले से मौजूद भूमिकाओं और नई उभरती हुई भूमिकाओं के बीच भूमिका संबंधों में विरोधाभासों, संघर्षों, और विसंगतियों के रूप में प्रकट होता है, (राजगोपाल 1963)। कमाई करने वाले सदस्यों के रूप में, महिलाओं की नई भूमिका, माताओं और गृहिणियों के रूप में उनकी प्राथमिक भूमिका के साथ–साथ चलती है। जब एक गृहिणी व्यावसायिक भूमिका निभाती है, तो वह न केवल परिवार के भीतर बल्की उसके बाहर अपनी स्थिति में बदलाव पाती है, और अपने घर में और अपने में कार्यस्थल में दो भूमिकाओं के दोहरे बोझ को समेटने के लिए बढ़ते दबाव (तनाव) को भी झेलती है।

जब महिला घर से बाहर अपना काम शुरू करती है तो उसे अनिवार्य रूप से अपनी पारिवारिक भूमिकाओं को पुनर्व्यवस्थित करना पड़ता है। विवाहित महिला पर संभावित प्रभाव, भोजन के समय उसकी अनुपस्थिति और कई कार्यों को स्वयं करने में असमर्थता होती होगी। छोटे बच्चों और अन्य आश्रितों की उपस्थिति उसकी परेशानीयों को और बढ़ा देती है। दोहरी भूमिकाएँ निभाने के लिए, कामकाजी महिला को एक सख्त समय–सारिणी के भीतर काम करना पड़ता है और चीजों को अधिक व्यवस्थित रूप से व्यवस्थित करना पड़ता है। इसमें स्वयं अधिक मानसिक और शारीरिक सतर्कता बरतने की आवश्यकता होती है। घर के बाहर महिलाओं के रोजगार

का मतलब दो चीजों से है। दूसरों के लिए उनकी कम उपलब्धता और उनकी दो भूमिकाओं के सफल प्रदर्शन को सक्षम करने के लिए दूसरों पर बढ़ती मांग। बाहर उनकी कार्य भागीदारी, केवल एक गतिविधि नहीं है, यह महिलाओं के उचित क्षेत्र, उनके पति की तुलना में उनकी स्थिति, पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना में अंतर्निहित मूल्यों, परिवार के सदस्यों की भूमिकाओं को पुनर्परिभाषित, बच्चों की देखभाल और लंबे समय तक घर से बाहर रहने के बारे में मानदंडों को प्रभावित करता है (देसाई और अनंतराम 1985)। कार्य स्तर पर कठिनाइयों के अलावा, भारतीय समाज में पाए जाने वाले कई मानक भ्रमों से उसकी समस्याएं बढ़ जाती हैं।

आज भी संयुक्त परिवार किसी न किसी रूप में विद्यमान है। उनसे अभी भी घर की देखभाल करने, अपने पारंपरिक व्यवसायों और जिम्मेदारियों में अकेले भाग लेने के साथ अपने ''स्त्री'' कार्यों को करने की उम्मीद की जाती है। अपनी व्यावसायिक भूमिकाओं के साथ, वह अपने आप पर अत्यधिक दबाव डालती है, और खुद को बार–बार थकावट की स्थिति में पाती है। दूसरी ओर, यदि वह इन कार्यों को कुशलता से नहीं करती है, तो वह अपराध बोध का अनुभव करती है, और इसलिए अपनी घरेलू और व्यावसायिक जिम्मेदारियों के बीच फंस जाती है। इसमें भारत की पितृसत्तात्मक व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है। हमारी दादी–नानी के दिनों से घरेलू सद्गुणों के पारंपरिक मानक नहीं बदले हैं। जाहिर है कि एक महिला जो अपना दिन घर से बाहर काम करने में बिताती है, वह घर की उतनी देखभाल नहीं कर सकती है। अगर उसके बच्चे हैं तो उसकी शंका और अपराधबोध की भावनाएँ दोगुनी हो जाती हैं। वह उनके पालन–पोषण हेतु आवश्यक ध्यान न दे पाने के अपराध का अनुभव करती है। सामान्य रूप से भारतीय समाज और विशेष रूप से भारतीय महिलाएं मानसिंक तनाव की स्थिति में हैं, जहां एक तरफ वे खुद को पेशेवर रूप से सुसज्जित कर रही हैं और दूसरी ओर उनसे पारंपरिक भूमिका निभाने की भी उम्मीद की जाती है।

महिलाओं की क्षमताएं निश्चित रूप से सीमित हैं और इस दोहरी जिम्मेदारी के परिणामस्वरूप तनाव होता है। काम की सेटिंग और काम करने की स्थितियां भी महत्वपूर्ण तनाव हैं। उसकी ईमानदारी पर अक्सर सवाल उठाए जाते हैं, उसकी दक्षता को अक्सर कम आंका जाता है, उसकी क्षमता की अक्सर परीक्षा ली जाती है। दरअसल, आज की पेशेवर महिला को ''सुपर वुमन'' बनना है।

अध्यापन के पेशे को हमेशा एक ''महान पेशा'' माना गया है। पारंपरिक भारतीय समाज में, शिक्षक छात्र संबंध का अभूतपूर्व महत्व था। ज्ञान प्रदान करना, शिक्षक के विभिन्न कार्यों में से एक है, साथ ही अनुशासन स्थापित करना, सम्मान और सम्मान के सामाजिक मूल्यों को विकसित करना भी शिक्षक के कार्य माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में, परिवार के अलावा शिक्षक ने व्यक्ति के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिक्षा के एक अर्थ में, व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण और विकास की संपूर्ण प्रक्रिया शामिल होती है।

हालाँकि आज के शिक्षक को दुविधा का सामना करना पड़ रहा है। जैसा कि गोबल और पोर्टर (1980) बताते हैं कि, शिक्षक भ्रमित है कि वास्तव में उन्हें क्या करना चाहिए क्योंकी समाज ने उन्हें व्यापक और जटिल भूमिका सौंपी है। वे अपने शैक्षिक उद्देश्यों के बारे में निष्पक्ष रूप से सोचने और उन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित करने के लिए बाध्य हैं। यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि समाज का एक ''अभिसरण'' रूप जिसमें भाषा, संस्कृति और व्यवहार जैसे क्षेत्रों में शिक्षा की एकीकृत प्रकृति महत्वपूर्ण है, ने एक ''भिन्न'' समाज को रास्ता दिया है, जो एक शिक्षक के काम में इतने विविधीकरण की मांग करता है (मेराजी 1983, डनहम, 1986 में वर्णित)।

शिक्षकों को अक्सर विभिन्न भूमिकाओं में संयोजित करने की स्थितियों का सामना करना पड़ता है, वे भूमिकाएं जो विरोधाभासी हैं और जिस कारण विभिन्न पदों के बीच एक अनिश्चित संतुलन बनाए रखना पड़ता है। शिक्षक के प्रति समाज का दृष्टिकोण सामान्य हो गया है। शिक्षक खुद को अधिक तनाव में महसूस करते हैं और उत्पीड़न की भावनाओं के अधीन हो जाते हैं, जो समाज के विकास के कारण उनके पेशे में गहरे बदलाव लाने का दबाब देता है (रंजार्ड 1984, डनहम, 1986 में वर्णित)।

शिक्षक तनाव के स्रोत 6 प्रमुख श्रेणियों में आते हैं। छात्रों में खराब प्रेरणा, छात्र अनुशासनहीनता, काम करने की खराब स्थिति, समय का दबाव, निम्न स्थिति और सहकर्मियों के साथ संघर्ष।

छात्रों में प्रेरणा की कमी और छात्रों में अनुशासनहीनता तनाव के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जबकि अनुशासनहीनता तनाव का एक प्रमुख क्षेत्र है, इसे अधिकांश शिक्षकों द्वारा बिना किसी अनावश्यक तनाव के प्रभावी ढंग से निपटाया जा सकता है। जबकी खराब प्रेरणा से निपटना अधिक सुसंगत और कठिन है। खराब काम करने का कारण अपर्याप्त उपकरण, खराब स्टाफरूम सुविधाएं और संसाधनों की कमी, है।

समय का दबाव, बहुत कम समय के भीतर, शिक्षकों को दी गई जिम्मेदारियों को संदर्भित करता है। एक शिक्षक के रोजमर्रा के जीवन से जुड़ी हुई समय–सीमाएं इनके तनाव का एक प्रमुख कारंण हैं (लाफलिन 1984, ड्यू 1986)। निम्न स्थिति शिक्षकों की इस धारणा को दर्शाती है कि उनके पेशे को समाज द्वारा कम सम्मान दिया जाता है। शिक्षकों के सम्मान को कम करना उन्हें शिक्षक थकावट के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है (क्रेमर और हॉफमैन 1985, डनहम 1985 में वर्णित)।

सहकर्मियों के साथ संघर्ष को भी तनाव के एक प्रमुख क्षेत्र के रूप में देखा गया है (मोरक्को एट अल 1982, ड्यू 1986, डनहम 1986 में वर्णित)। इस तरह के तनाव विशुद्ध रूप से अकादमिक असहमति से लेकर प्रबंधकीय निर्देशन से असहमति के कारण हो सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षण पेशा एक तनावपूर्ण पेशा है, और शिक्षकों से उनके काम में की जाने वाली मांगों की प्रकृति का मतलब है, कि भविष्य में भी ऐसा तनाव रहने की संभावना है।

तनावपूर्ण परिस्थितियों के बावजूद यह समझना दिलचस्प है कि महिला शिक्षक उनका सामना कैसे करती हैं। तेजी से तकनीकी परिवर्तनों के बावजूद, जिसने संयुक्त परिवार को संरचनात्मक रूप से तोड़ दिया है, यह एक सच्चाई है कि एकजुटता और रिश्तेदारी संबंधों की भावनाएं अभी भी प्रबल हैं। अकेले तनाव का सामना करना आसान नहीं है, और हमें अन्य प्रणालियों की मदद लेने की जरूरत है जो तनाव के प्रभावों को कम करती हैं। सामाजिक समर्थन हमारे पास मौजूद सहायक सामाजिक संबंधों की ताकत और संख्या पर भी निर्भर करता है।

मिशिगन विश्वविद्यालय के जेम्स हाउस (1974) द्वारा सामाजिक समर्थन को चार घटकों के रूप में परिभाषित किया गया है।

1. भावनात्मक समर्थन, जो सहानुभूति, देखभाल, प्यार, विश्वास और चिंता प्रदान करता है। शोधकर्ताओं के अनुसार, यह सबसे महत्वपूर्ण घटक है।
2. साधन समर्थन, जिसमें व्यवहार शामिल होता है और जो साधनों और सेवाओं के माध्यम से सीधे जरूरतमंद व्यक्ति की मदद करता है।
3. सूचनात्मक सहायता, जो व्यक्ति को ऐसी जानकारी प्रदान करती है जिसका उपयोग व्यक्तिगत और पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने में किया जा सकता है। इस प्रकार का समर्थन लोगों को अपनी संसाधन क्षमता बढ़ाकर स्वयं की सहायता करने में मदद करता है।
4. मूल्यांकन समर्थन, एक अप्रत्यक्ष समर्थन भी है। यह सामाजिक तुलना, के माध्यम से स्व–मूल्यांकन से संबंधित है।

किसी भी सहायक संबंध में समय, ऊर्जा और वस्तुओं और सेवाओं के संदर्भ में कुछ लागत शामिल होती है। हाउस (1974) के अनुसार सामाजिक समर्थन तीन संभावित तरीकों से मदद कर सकता है।

1. यह सीधे तनाव के स्तर को कम कर सकता है। उदाहरण के लिए, कार्यस्थल में, सहायता प्रदान करने वाला सहयोगी या बॉस होने से, काम पर पारस्परिक तनाव कम हो सकता है। ऐसे संबंध संबद्धता, अनुमोदन और मूल्यांकन की मानवीय आवश्यकता को पूरा कर सकते हैं, जो श्रमिकों को उनकी नौकरी से संतुष्टी प्रदान कर सकते हैं।
2. सामाजिक समर्थन से तनाबयुक्त मानसिक बीमारी दूर होती है जिससे स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ावा मिलता है। इस तरह के रिश्ते व्यायाम और पोषण जैसी स्वस्थ आदतों को विकसित करने में मदद कर सकते हैं। भारत के कई शहरों में आज व्यायाम केंद्र हैं, जैसे जिम, स्वास्थ्य क्लब आदि जो न केवल शारीरिक रूप से तनाव कम करते हैं, बल्कि उन्हें अपनेपन की भावना भी प्रदान करते हैं।
3. सहायक संबंध (supportive relationship) तनाव के प्रभाव को कम करते हैं। जिससे कल्याण की भावना बढ़ती है।

एक सहायक (supportive) परिवार और सामाजिक नेटवर्क वाले व्यक्ति तनाव का अच्छी तरह से सामना करते हैं। समूह भावनाएँ किसी के आत्मविश्वास के स्तर को प्रोत्साहित करती और बढ़ाती हैं और वे शक्ति के

महान स्रोत हो सकते हैं। कई लोगों के लिए, धर्म अपने सिद्धांतों और विश्वासों के माध्यम से और उन विश्वासों को दूसरों के साथ साझा करने के अवसर के माध्यम से, मजबूत सामाजिक समर्थन प्रदान करता है। तनाव के समय में धार्मिक विश्वास भी समर्थन का एक शक्तिशाली स्रोत हो सकता है। भारत जैसे परंपरा से बंधे समाज में सामाजिक समर्थन प्रणाली विशेष रूप से प्रभावी है। यद्यपि औद्योगीकरण, शहरीकरण, बेरोजगारी और जनसंख्या वृद्धि का अर्थ अधिक सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक गतिशीलता है, जिसके कारण लोग अपने रिश्तेदारों से दूर रहते हैं, रिश्तेदारी की भावनाएँ और एकजुटता के मजबूत संबंध अभी भी बहुत गहरे हैं। लोग अभी भी संपर्क बनाए रखते हैं और जरूरत पड़ने पर भावनात्मक और सामाजिक समर्थन प्रदान करने के लिए खुद को एक–दूसरे के लिए समर्पित रहते हैं। अतः तनाव एक बाहरी रूप से उत्पन्न घटना है, जो महिला शिक्षाविदों के जीवन में सक्रिय है, राहत के स्रोत सामाजिक संरचना में ही अंतर्निहित हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. Stress and Poverty: A Cross-Disciplinary Investigation of Stress in Cells, Individuals, and Society, Michael Breitenbach, Springer 2018.
2. How Stress Influences Purpose Development: The Importance of Social Support, Ellen Gutuwsk, Journal of Adolescent Research 2017.
3. Social Stress: Theory and Research, Carol S. Aneshensel, Department of Community Health Sciences, School of Public Health, University of California, Los Angeles, California.
4. The Epidemiology of Social Stress, R. Jay Turner, Blair Wheaton and Donald A. Lloyd, American Sociological Review, No. 1, Published By: American Sociological Association 1995, 60.
5. Stress among managers: The importance of dynamic tasks, predictability, and social support in unpredictable times, Mohr, G., & Wolfram, H.J. 2010.
6. The stress-buffering role of social support, Dean, A., & Lin, N. 1977.
7. Google Search many sites.